अध्याय–1
भारतीय दर्शन

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। सोचना मनुष्य का विशिष्ट गुण हैं। इसी गुण के कारण वह पशुओं से भिन्न समझा जाता है।विवेक अर्थात सही गलत में भेद करने वाली बुद्धि से युक्त होने के कारण मनुष्य विश्व की विभिन्न वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने का प्रयास करता हैं।मनुष्य की बौद्धिकता उसे कई प्रश्नों के उतर जानने हेतु प्रेरित करती है जो कि निम्नलिखित अनुसार है–

विश्व का स्वरूप क्या है?इसकी उत्पत्ति किस प्रकार तथा क्यों हुई?विश्व का कोई प्रयोजन है अथवा यह प्रयोजनहींन है?आत्मा क्या है?जीव क्या है?ईश्वर है अथवा नहीं?ईश्वर का स्वरूप क्या है?ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण क्या है? जीवन का चरम लक्ष्य क्या है?सत्ता का स्वरूप क्या है?ज्ञान का साधन क्या है?सत्य ज्ञान का स्वरूप और सीमाएँ क्या है?शुभ और अशुभ क्या है?उचित और अनुचित क्या है?नैतिक निर्णय का विषय क्या है?व्यक्ति और समाज में क्या सम्बन्ध है? आदि।

दर्शन इन प्रश्नों का युक्तिपूर्वक उतर देने का प्रयास करता है।दर्शन में इन प्रश्नों का उतर देने के लिए भावना या विश्वास का सहारा नहीं लिया जाता है,बल्कि बुद्धि का प्रयोग किया जाता है।इन प्रश्नों के लिए मानव का प्रेम या उत्कंठा का भाव व्यक्त होता है।इन प्रश्नों से यह भी सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण विश्व दर्शन का विषय हैं।

इन प्रश्नों का उतर मानव अनादिकाल से देता रहा है और भविष्य में भी निरन्तर देता रहेगा। इन प्रश्नों का उत्तर जानना मानवीय स्वभाव का अंग है। यही कारण है कि यह प्रश्न हमारे सामने नहीं उठता कि हम दार्शनिक बने अथवा नहीं क्योंकि दार्शनिक तो हम हैं ही। इस सम्बन्ध में दार्शनिक हक्सले का यह कथन उल्लेखनीय है कि–'हम सबों का विभाजन दार्शनिक और अदार्शनिक के रूप में नहीं कर सकते बल्कि कुशल और अकुशल दार्शनिक के रूप में ही सम्भव हैं।

(1) परिभाषा, स्वरूप एवं सामान्य विशेषताएं :–

भारतीय दर्शन अर्थ एवम परिभाषा–दर्शन शब्द की उत्पत्ति दृश् धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है–देखना। यह देखना आन्तरिक अथवा बाहरी हो सकता है। प्रायः दर्शन का अर्थ आलोचनात्मक अभिव्यक्ति,तार्किक मापदण्ड अथवा प्रणाली होता है।यह भी माना जाता रहा है कि बुद्धि की सहायता से मनुष्य जो भी युक्तिपूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करता है उसे दर्शन कहते है।वास्तव में दर्शन में देखना का अर्थ है परम तत्व को देखना अथवा उसका साक्षात्कार करना।इस परम तत्व का साक्षात्कार मोक्ष की अवस्था में ही होता है।इस प्रकार से भारत का दार्शनिक केवल तत्व की बौद्धिक व्याख्या से ही सन्तुष्ट नहीं होता है,बल्कि वह तत्व की अनुभूति प्राप्त करता है।

दार्शनिक तौर पर स्वयं के आन्तरिक अनुभव को प्रमाणित करना तथा उसे तर्कसंगत ढंग से प्रमाणित करना तथा उसे तर्कसंगत ढंग से प्रचारित करना ही दर्शन कहलाता है।जगत में चेतन और अचेतन दो ही पदार्थ है।इसके बाहरी और स्थूल भाव पर बाहर से विचार करने वाले शास्त्र को विज्ञान और सूक्ष्म भाव पर भीतर से निर्णय करने वाले शास्त्र को दर्शन कहते है।

भारतीय दर्शन का स्वरूप–भारतीय दर्शन के अर्थ के पश्चात यह जानना आवश्यक है कि इस दर्शन का स्वरूप कैसा है?इस सम्बन्ध में प्रथम दृष्टया यह तो कहा ही जा सकता है कि भारतीय दर्शन एक व्यावहारिक दर्शन है जिसकी उत्पति आध्यात्मिक असन्तोष से हुई है। प्रो0 मैक्समूलर ने इसी कारण कहा था –'भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्ति के लिए नहीं किया जाता है बल्कि जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किया जाता था।'

भारत के दार्शनिकों ने विश्व में विभिन्न प्रकार के दुःखों को पाकर उनके उन्मूलन के लिए दर्शन की शरण ली थी।इस कारण कई आलोचक भारतीय दर्शन के स्वरूप पर एक आक्षेप लगा देते है कि यह एक निराशावादी दर्शन है।यह ठीक है कि अधिकांश भारतीय दर्शनों इस संसार को दुखःमय माना तथा दुःख और संसार से मुक्ति को समानार्थक माना किन्तु दुःखों से मुक्ति सम्भव है और दुःख मुक्ति के उपाय क्या है यह उल्लेख करके भारतीय दर्शन मनुष्य के जीवन में आशा का संचार करता है जिससे सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन निराशावादी नहीं है बल्कि इसका स्वरूप आशावादी है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक अन्य स्पष्टीकरण यह भी आवश्यक है कि भारतीय दर्शन का अर्थ हिन्दू दर्शन नहीं है। प्राचीन तथा अर्वाचीन, हिन्दू और अहिन्दू, आस्तिक और नास्तिक तथा ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी जितने प्रकार के भारतीय दार्शनिक विचार है उन सभी को संयुक्त रूप से भारतीय दर्शन कहते है।भारतीय दर्शन के स्वरूप की इस विशेषता को हम माधवाचार्य के ग्रन्थ सर्वदर्शन–संग्रह की विषयवस्तु के माध्यम से समझ सकते है।माधवाचार्य स्वयं वेदानुयायी हिन्दू थे, किन्तु उन्होने अपने उपयुर्क्त ग्रन्थ में

चार्वाक,बौद्ध तथा जैन मतों को भी दर्शन में स्थान दिया था जो कि हिन्दू धर्मानुयायी नहीं है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय दर्शन की दृष्टि अत्यंत व्यापक तथा उदार है।यद्यपि भारतीय दर्शन की अनेक शाखाएँ है तथा उनमें मतभेद भी है किन्तु फिर भी एक–दूसरे कि उपेक्षा नहीं करते है। भारतीय दर्शन की सभी शाखाएँ एक–दूसरे को समझने का प्रयास करती है।वे विचारों की युक्तिपूर्वक समीक्षा करती है,तभी किसी सिद्धान्त पर पहुँचती है।इसी उदार मनोवृति का परिणाम है कि भारतीय दर्शन में विचार–विमर्श के लिए एक विशेष प्रणाली की उत्पत्ति हुई जिसमें पहले पूर्वपक्ष होता है,तब खण्डन होता है और अन्त में उतर पक्ष अथवा सिद्धान्त होता है।पूर्वपक्ष में विरोधी मत की व्याख्या होती है।उसके बाद उसका खण्डन अथवा निराकरण होता है और अन्त में उतर–पक्ष आता है जिसमें दार्शनिक अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक सामान्य तत्व यह है कि भारतीय दर्शन की प्रायःप्रत्येक शाखा अत्यन्त समृद्ध रही है। उदाहरण के लिए वेदान्त में चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक आदि मतों पर विचार किया गया है। यह रीति केवल वेदान्त में ही नहीं है बल्कि अन्य दर्शनों में भी पाई गयी है। इस प्रकार से भारत का प्रत्येक दर्शन ज्ञान का एक भण्डार है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि भारतीय दर्शन का चरम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है। इस प्रकार से भारतीय दर्शन एक साधन के रूप में दिख पडता है जिसके द्वारा मोक्षानुभूति प्राप्त होती है।भारतीय दर्शन का स्वरूप ऐसा है कि इसमें इहलोक से भी ज्यादा रूचि परलोक में दिखाई गयी है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है इसका धार्मिक स्वरूप।इसका कारण यह है कि भारतीय दर्शन पर धर्म कि अमिट छाप है।दर्शन और धर्म दोनो का उद्देश्य व्यावहारिक है।मोक्षानुभूति दर्शन और धर्म का सामान्य लक्ष्य है। धर्म से प्रभावित होने के कारण भारतीय दर्शन में आत्मसंयम पर बहुत बल दिया गया है। भारतीय दर्शन धार्मिक होने के साथ–साथ अध्यात्म के रंग में भी रंगा हुआ है। भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक ज्ञान को प्रधानता दी गयी है। यहॉ का दार्शनिक सत्य के सैद्धान्तिक विवेचन से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता है बल्कि वह सत्य की अनुभूति भी करना चाहता है।आध्यात्मिक ज्ञान, तार्किक ज्ञान से उच्च है क्योकि तार्किक ज्ञान में ज्ञाता,ज्ञान और ज्ञेय का द्वैत पाया जाता है जबकि आध्यात्मिक ज्ञान में वह द्वैत मिट जाता है। आध्यात्मिक ज्ञान निश्चित तथा संशयरहित होता है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप के सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह कही जा सकती है कि यह एक प्रकार का संश्लेषणात्मक दर्शन है जिसमें समग्र चिन्तन पर बल मिलता है। भारत के प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय में प्रमाण विज्ञान, तर्कविज्ञान, नीति विज्ञान, ईश्वर विज्ञान आदि की समस्याओं पर एक ही साथ विचार किया गया है।

भारतीय दर्शन के स्वरूप को समझने का एक अन्य माध्यम है इसकी पाश्चात्य दर्शन अर्थात फिलोसोफी से तुलना के माध्यम से दोनो दृष्टिकोणों के भेदज्ञान को जानना जो कि निम्नलिखित अनुसार है–

भारतीय दर्शन	पाश्चात्य दर्शन
दर्शन शब्द की उत्पति दृश धातु से हुई है जिसका शाब्दिक एवँ वास्तविक अर्थ है–परम तत्व का साक्षात्कार तथा अनुभूति।	फिलोसोफी शब्द की उत्पति दो यूनानी शब्दों फिलॉस अर्थात प्रेम और सोफिया अर्थात ज्ञान से हुई है।इस प्रकार से फिलोसोफी का शाब्दिक अर्थ है ज्ञान के प्रति अनुराग।
भारतीय दर्शन का प्रारम्भ आध्यात्मिक असन्तोष से हुआ है।भारत के दार्शनिकों ने विश्व में अनेक प्रकार के दुःखों को पाकर के उनके उन्मूलन के लिए दर्शन की शरण ग्रहण की है।	पश्चिमी दर्शन का प्रारम्भ आश्चर्य तथा उत्सुकता से हुआ है।इसी कारण से पाश्चात्य दर्शन को मानसिक व्यायाम भी कहा जाता है।
भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण जीवन और जगत् के प्रति मुख्य रूप से दुःखात्मक तथा अभावात्मक है।	पाश्चात्य दर्शन में जीवन और जगत् के प्रति दुःखात्मक दृष्टिकोण की उपेक्षा की गयी है तथा भावात्मक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी है।
भारतीय दर्शन एक प्रकार का व्यावहारिक दर्शन है जिसका उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं है बल्कि जीवन के चरम उद्देश्य अर्थात मोक्ष की प्राप्ति करना है।	पाश्चात्य दर्शन मुख्य रूप से एक प्रकार का सैद्धान्तिक चिन्तन मात्र है जिसमें केवल अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के उद्देश्य से विश्व,ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में चिन्तन किया जाता है।
भारतीय दर्शन का चरम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है।इस प्रकार से भारत में दर्शन एक साधन के रूप में दिखाई पडता है जिससे मोक्षानुभूति होती है।	पाश्चात्य दर्शन में दर्शन का अनुशीलन किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न होकर के केवल स्वयं के ज्ञान हेतु किया जाता है।इस प्रकार पश्चिम में दर्शन को साध्य रूप में स्वीकार किया गया है।
भारतीय दर्शन का स्वरूप मुख्य रूप से धार्मिक है।इसका कारण यह है कि भारतीय दर्शन पर धर्म की अमिट छाप है।दर्शन तथा धर्म दोनों का उद्देश्य व्यावहारिक है।मोक्षानुभूति दर्शन और धर्म दोनो का सामान्य लक्ष्य है।धर्म से प्रभावित होने के कारण भारतीय दर्शन में आत्मसंयम पर बल दिया गया है।	पश्चिमी दर्शन को मुख्य रूप से वैज्ञानिक कहा जाता है क्योंकि पश्चिम के अधिकांश दार्शनिकों ने वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया था।पश्चिमी दर्शन में विज्ञान की प्रधानता होने के कारण दर्शन और धर्म का सम्बन्ध विरोधात्मक माना जाता है।
भारतीय दर्शन का स्वरूप मुख्य रू॰ से आध्यात्मिक है क्योकि भारतीय दार्शनिक केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से ही सन्तुष्ट नहीं होता है बल्कि वह सत्य की अनुभूति पर भी बल देता है।आध्यात्मिक ज्ञान तार्किक ज्ञान से उच्च स्तर का होता है क्योकि ज्ञाता–ज्ञान और ज्ञेय का द्वैत नहीं पाया जाता है।	पाश्चात्य दर्शन का स्वरूप मुख्यतः बौद्धिक है क्योकि इसमें यह माना गया है कि बुद्धि के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।बुद्धि जब भी किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करती है तब वह भिन्न–भिन्न अगों के विश्लेषण के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करती है।

उपयुर्क्त सम्पूर्ण बिन्दुओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दर्शन का स्वरूप पाश्चात्य दर्शन से भिन्न है। इन विभिन्नताओं से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय और पाश्चात्य दर्शन का मिलन असम्भव है, सर्वथा अनुचित है। गत पचास वर्षो से यूरोप और भारत के विद्वान पूर्वी और पश्चिमी दर्शन के संयुक्त आधार पर एक विश्व दर्शन के सम्पादन के लिए प्रयत्नशील है। विश्व दर्शन के निर्मित हो जाने के बाद दर्शन भी विज्ञान की तरह से सर्वमान्य हो जायेगा।

भारतीय दर्शन की विशेषताएँ—दर्शन ही किसी देश की सभ्यता और संस्कृति को गौरवान्वित करता है। दर्शन की उत्पति स्थान विशेष के प्रचलित विचारों से होती है। अतः दर्शन में स्थानीय विचारों की छाप अवश्य पाई जाती है। भारतीय दर्शनों में मतभेद पाया जाता है, किन्तु भारतीय संस्कृति की छाप रहने के कारण उनमें साम्य भी पाया जाता है। इस साम्य को हम भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषता कह सकते है जो कि निम्नलिखित अनुसार है—

(1) आध्यात्मिक असन्तोष से दर्शन की उत्पति— भारतीय दर्शन की जो सामान्य विशेषता आस्तिक—नास्तिक तथा ईश्वरवादी—अनीश्वरवादी सब को एक सूत्र में बांधती है वह यह है कि इन सब दर्शनों की उत्पति दुःख निवारण हेतु ही हुई है। मनुष्य के दुःखों का क्या कारण है? इसे जानने के लिए भारत के सभी दर्शन प्रयत्न करते है।

(2) कर्म सिद्धान्त में विश्वास— सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बॉधने वाली एक महत्वपूर्ण कडी है—कर्म विचार की स्वीकार्यता। कर्म विचार की यह मान्यता है कि हम जो कर्म करते है उसका फल हमें अवश्य मिलता है अर्थात किए गये कर्म का फल कभी भी नष्ट नहीं होता है तथा बिना किए गए कर्म का फल हमे कभी भी प्राप्त नहीं होता है।

कर्मफल से जुडी इस नैतिक सार्वभौम व्यवस्था को वैदिक साहित्य में 'ऋत' कहा गया था। ऋत का नियन्त्रक वरूण देव को माना गया था। यही देवताओं में, ग्रह—नक्षत्रों में तथा अन्यान्य वस्तुओं में वर्तमान व्यवस्था है। ऋग्वेद की ऋचाएँ इसे प्रमाणित करती है।

वैदिक काल के बाद मीमांसा में इसे 'अपूर्व' कहा गया था। वर्तमान के कर्मो का उपभोग परवर्ती जीवन में 'अपूर्व' के द्वारा ही किया जाता है। न्याय—वैशेषिक में इसें 'अदृष्ट' कहा गया था क्योकि यह दृष्टिगोचर नहीं होता है। वस्तुओं का उत्पादन तथा घटनाओं का उपक्रम इसी के अनुसार होता है।इसी नैतिक व्यवस्था को बाद में कर्मवाद के रूप में स्वीकार किया गया जिसे प्रायः भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदाय स्वीकार करते है।नास्तिक दर्शनों में जैन तथा बौद्ध भी कर्मवाद को स्वीकार करते है यद्यपि चार्वाक इस सम्बन्ध में एक अपवाद है।

कर्म शब्द के दो अर्थ स्वीकार किए गए है जिसमें से प्रथम अर्थ तो इसे एक नैतिक नियम के रूप में स्थापित करता है जबकि इसका दूसरा अर्थ इसे एक ऐसी शक्ति के रूप में स्थापित करता है जो कि विभिन्न कर्मफल उत्पन्न करती है।कर्म के इस दूसरे रूप के अनुसार ही इसके तीन भेद स्वीकार किए गए है जो कि निम्नलिखित अनुसार है—

(अ) संचित कर्म— ये वे कर्म है जो पूर्व जन्म के कर्मो के कारण उत्पन्न होते है किन्तु जिसके फल मिलना अभी भी प्रारम्भ नहीं हुआ है।

(ब) प्रारब्ध कर्म— पूर्व जन्म के वे कर्म, जिनका फल मिलना इस जन्म में प्रारम्भ हो चुका है। वर्तमान शरीर तथा धन—सम्पति आदि प्रारब्ध कर्म के ही फल है।

(स) संचीयमान अथवा कियमाण कर्म— इन कर्मो का संचय वर्तमान जीवन के कार्यो के कारण होता है तथा इनका फल मिलना भी प्रारम्भ नहीं होता है।

(3) बंधन का कारण अज्ञान है— सभी भारतीय दर्शन, चार्वाक को छोडकर यह मानते है कि जीव या आत्मा के बन्धन का सबसे प्रमुख कारण है—अज्ञान अथवा अविद्या। अज्ञान के निम्नलिखित दो प्रभावों के कारण जीव बन्धन में पड जाता है—

(अ) अज्ञान के कारण जीव को तत्वज्ञान नहीं हो पाता हैं जिसके कारण वह अनित्य को नित्य तथा अयथार्थ को यथार्थ समझ बैठता है।

(ब) अज्ञान के कारण जीव या आत्मा शरीर या जड को अपना वास्तविक स्वरूप मान बैठती है जिसके कारण वह शरीर को दुःखों को अपना मानकर के उसके दुःखों को भोगती है।

सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय यह मानते है कि अविद्या का अन्त केवल ज्ञान और संयम के माध्यम से ही सम्भव है।

(4) अज्ञान के निराकरण हेतु ज्ञान तथा ध्यान की स्वीकार्यता— चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय इस बात पर एकमत है कि अज्ञान का निराकरण केवल ज्ञान अथवा ध्यान के माध्यम से ही सम्भव है।जैन दर्शन में सम्यक ज्ञान को अज्ञान के निराकरण में सहायक बताते हुए यह कहा गया है कि इसके माध्यम से जीव तथा अजीव के भेद ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

जैन ही की भॉति बौद्ध दर्शन में भी ज्ञान तथा ध्यान के महत्व को स्वीकार करते हुए अष्टांगिक मार्ग के प्रथम अंग के रूप में अज्ञान के विरोधी सम्यक दर्शन को शामिल करते हुए कहा गया है कि सम्यक दर्शन का अर्थ है वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना। इसी प्रकार से समाधि के रूप में ध्यान को अष्टांगिक मार्ग के अंतिम चरण के रूप स्थापित करते

हुए कहा गया है कि चित्त को एकाग्र करने की योग्यता ही सम्यक समाधि है जिसके चार चरण है–

(अ) सम्यक समाधि के प्रथम चरण में चार आर्य सत्यों का चिंतन किया जाता है।

(ब) सम्यक समाधि की दूसरी अवस्था में चार आर्य सत्यों के सम्बन्ध में सभी प्रकार के संदेहों का निराकरण हो जाता है तथा इस अवस्था में आनंद एवं शांति का ज्ञान भी साथ–साथ होता है।

(स) सम्यक् समाधि की तीसरी अवस्था में आनंद के प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है।

(द) इस अवस्था में चित्तवृति का पूर्ण निरोध हो जाता है तथा यह अवस्था पूर्ण शांति,पूर्ण विराग तथा पूर्ण निरोध की अवस्था है।

न्याय–वैशेषिक तथा मीमांसा और उतर–मीमांसा दर्शन भी श्रवण–मनन–निद्धिध्यासन के रूप में अज्ञान निवारण हेतु ज्ञान तथा समाधि को स्वीकार कर लेते है।मोक्ष प्राप्ति अथवा ज्ञान के लिए सर्वप्रथम धर्म–ग्रन्थों के आत्म–विषयक उपदेशों को श्रवण करना चाहिए।इसके पश्चात मनन के माध्यम से आत्मविषयक ज्ञान को सुदृढ करना चाहिए और सबसे अन्त में निद्धिध्यासन के माध्यम से आत्मा का निरन्तर ध्यान करना चाहिए।

सांख्य तथा योग दर्शन भी अज्ञान के निराकरण हेतु ज्ञान एवं ध्यान के महत्व को स्वीकार करते किन्तु जहाँ सांख्य दर्शन ज्ञान पर अधिक महत्व देता है वही योग दर्शन ध्यान को अधिक महत्वपूर्ण मानता है।सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति तथा पुरूष के भेदज्ञान को जान लेने अर्थात विवेकज्ञान के माध्यम से ही अज्ञान का अन्त सम्भव है।योग दर्शन मानता है कि विवेक ज्ञान की उत्पत्ति के लिए अष्टांगिक योग की पालना आवश्यक है जिसका अन्तिम सोपान सम्यक् समाधि है जिसका अर्थ है–ध्याता, ध्येय तथा ध्यान का एकाकार हो जाना।इस प्रकार से यह भी कहा जा सकता है कि अज्ञान के निवारण में सांख्य सैद्धान्तिक मार्ग को तथा योग व्यावहारिक मार्ग को प्रस्तुत करता है।

(5) आत्मसंयम पर विषेश बल– भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि चार्वाक के अतिरिक्त सभी दार्शनिक सम्प्रदाय जिनमें जैन तथा बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शन भी शामिल है ने जीवन में आत्मसंयम के महत्व को स्वीकार्य किया है तथा आत्म–निग्रह को जीवन का आधार माना है।

सर्वप्रथम यदि बात की जाये जैन दर्शन की तो जैन दर्शन सम्यक चरित्र के माध्यम से आत्मसंयम के महत्व को स्थापित करता है । जैन दर्शन के सम्यक् चरित्र में जैन भिक्षुओं के लिए पंच महाव्रत तथा जैन गृहस्थों के लिए पंच अणुव्रत इसी संयम को स्पष्ट करते है।इसके अतिरिक्त जैन दर्शन के पंच महाव्रत में शामिल समिति,गुप्ति,अनुप्रेक्षा,परीषह तथा धर्म विचार भी संयम के महत्व को स्पष्ट करते है।

बौद्ध दर्शन में भी संयम के महत्व को स्वीकार करते हुए इसे अष्टांगिक मार्ग में पर्याप्त महत्व दिया गया है।अष्टांगिक मार्ग में सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम तथा सम्यक् स्मृति के माध्यम से जीवन में आत्मसंयम के महत्व को स्थापित किया गया है।

सांख्य दर्शन ने आत्म संयम के सैद्धान्तिक आधार को प्रस्तुत किया है जिस पर योग दर्शन ने आत्मसंयम के व्यावहारिक महल को निर्मित किया है जिसे कि अष्टांगिक योग कहते है तथा जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम ,प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि जैसे आत्मसंयम के उपायों का वर्णन किया गया है।

मीमांसा दर्शन भी आत्मसंयम को अत्यन्त आवश्यक मानता है तथा इसी कारण विभिन्न प्रकार के कर्मो के वर्णन के माध्यम से आत्मसंयम की अवधारणा को समझाता है।मीमांसा दर्शन में पांच प्रकार के कर्मो का उल्लेख किया गया है।ये कर्म इस प्रकार है–नित्य कर्म,नैमितिक कर्म,काम्य कर्म,निषिद्ध कर्म तथा प्रायश्चित कर्म।

वेदान्त में भी संयम के महत्व को स्थापित करते हुए साधन चतुष्टय के माध्यम से इस प्रकट किया गया है।

(6) मोक्ष ही जीवन का चरम लक्ष्य– चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दर्शन मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानते है। मोक्ष का सामान्य अर्थ है–जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति तथा दुःखों का अन्त। इसके अतिरिक्त सभी भारतीय दर्शन यह भी स्वीकार करते है कि मोक्ष,बन्धन का विपरितार्थी है जिसमें अज्ञान अथवा अविद्या का अन्त हो जाता है।

जैन दर्शन में मोक्ष के साधन के रूप में त्रिरत्न की सता स्वीकार की गयी है जिसमें सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान तथा सम्यक चरित्र शामिल है।जैन दर्शन में मोक्ष के दो भेद स्वीकार किये गये है–भाव मोक्ष तथा द्रव मोक्ष।

बौद्ध दर्शन में मोक्ष को निर्वाण नाम से सम्बोधित किया गया है जिसका शाब्दिक अर्थ है दुःख रहित अवस्था।बौद्ध दर्शन मोक्ष की प्राप्ति हेतु अष्टांगिक मार्ग की पालना को आवश्यक मानता है।

न्याय तथा वैशेषिक मोक्ष के लिए अपवर्ग शब्द का प्रयोग करते है। न्याय तथा वैशेषिक मोक्ष को आन्नदरहित तथा दुःख रहित अवस्था मानते है जिसकी प्राप्ति श्रवण,मनन तथा निदिध्यासन के माध्यम से सम्भव है। न्याय–वैशेषिक के मत का समर्थन ही मीमांसा करता है।

सांख्य–योग मत में मोक्ष को कैवल्य कहा गया है जिसकी परिभाषा करते हुए कहा योगसूत्र में कहा गया है–'जब सभी गुणों–सत्व,रजस तथा तमस के कार्य समाप्त हो जाते है और उससे जो विकार रहित स्थिति उत्पन्न होती है जो प्रकृति–पुरूष भेदजन्य ज्ञान है।' सांख्य दर्शन विवेक ज्ञान को तथा योग दर्शन अष्टांगिक योग को मोक्ष का मार्ग मानते है।सांख्य–योग के अनुसार मोक्ष की अवस्था में तीन प्रकार के दुखों–आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक का अन्त हो जाता है तथा पुरूष या आत्मा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को पुन प्राप्त कर लेती है। इसी कारण कैवल्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है–'कैवल्य की स्थिति आन्नद से रहित विशुद्ध चैतन्य की अवस्था है।'

वेदान्त में मोक्ष को अन्य सभी दर्शनों के विपरीत सत्,चित और आंनद से युक्त अवस्था माना गया है जिसमें जीवात्मा,बह्म से एकाकार हो जाती है। वेदान्त में वेदान्त ज्ञान को ही मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र उपाय माना गया है जिससे पूर्व साधक को साधन चतुष्टय का पालन करना होगा जिसमें निम्नलिखित शामिल है–

(अ) नित्यानित्य वस्तुविवेक–साधक को सबसे पहले नित्य तथा अनित्य पदार्थो की विवेचना करनी चाहिए।

(ब) इहामूत्रार्थ भोगविराग–साधक को लौकिक तथा अलौकिक भोगों की कामना का त्याग कर देना चाहिए।

(स) शमदमादि साधन–इसमें निम्नलिखित शामिल है–

- शमन–मन का संयम
- दम–इन्द्रियों का नियन्त्रण
- श्रद्धा–शास्त्र में निष्ठा रखना ही श्रद्धा है।
- समाधान–चित को ज्ञान के साधनों में लगाना ही समाधान है।
- उपरति–विक्षेपकारी कार्यो से विरत रहना
- तितिक्षा–शीत और गर्मी जैसे कष्टों को सहन करने की योग्यता

(द) मुमुक्षुत्व–साधक को मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ संकल्प होना चाहिए।

वेदान्त दर्शन में मोक्ष के दो भेद स्वीकार किए गये है– जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति। जीवन रहते हुए मोक्ष की प्राप्ति जीवन्मुक्ति है जिसका कारण है प्रारब्ध कर्म जिनका फलभोग प्रारम्भ हो जाने के कारण जीवन का बना रहना आवश्यक हो जाता है। प्रारब्ध कर्मो के पूर्ण फलभोग के बाद जब जीवन नष्ट हो जाता है तो इसी अवस्था को वास्तविक मोक्ष अथवा विदेह मुक्ति कहते है।

(7) आत्मा की सत्ता में विश्वास– भारतीय दर्शन की एक अन्य विशेषता है नित्य तत्व आत्मा की स्वीकार्यता। यद्यपि चार्वाक तथा बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते है। चार्वाक जहाँ शरीर को ही आत्मा घोषित कर शरीर से भिन्न किसी भी नित्य आत्म तत्व को स्वीकार नहीं करते है वही बौद्ध दार्शनिक भी किसी नित्य आत्म तत्व को स्वीकार नहीं करते है तथा क्षणिक चेतना के प्रवाह को ही आत्मा घोषित कर देते है।

चार्वाक तथा बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है। न्याय तथा वैशेषिक दर्शन आत्मा को द्रव्य के रूप में स्वीकार करते है तथा यह मानते है कि चैतन्य अथवा चेतना आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है बल्कि यह आत्मा का आगन्तुक गुण है अर्थात आत्मा का जब शरीर से सम्पर्क स्थापित होता है तभी उसमें चेतना का उदय होता है। इसी मत का समर्थन मीमांसा दर्शन भी करता है।

जैन दर्शन चेतन द्रव्य को जीव अथवा आत्मा कहता हैं। जीव का स्वरूप चेतना है अर्थात उसमें चेतना हमेशा पायी जाती है। जैन दर्शन में जीव को चेतना के अतिरिक्त अनंत चतुष्ट्य से भी युक्त माना गया है। अनंत चतुष्ट्य में अनंत ज्ञान, अनंतशक्ति ,अनंतदर्शन तथा अनंत आनंद को शामिल किया गया है।

जैन दर्शन की ही भाँति साँख्य तथा योग दर्शन भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है । सांख्य दर्शन में पुरूष या आत्मा का स्वरूप लक्षण चेतना को माना गया है। वह शरीर, मन, इन्द्रियों और बुद्धि से भिन्न है। वह अभौतिक है। उसका न आदि है और नहीं अन्त है। सांख्य दर्शन में पुरूष को चेतन मानते हुए भी निष्क्रिय माना गया है। वह सदैव ज्ञाता है और कभी भी ज्ञान का विषय नहीं बनता है। वह निस्त्रैगुण्य है। इसी कारण से सांख्य पुरूष को आन्नद–स्वरूप भी नहीं मानता है। सांख्य का पूरक कहे जाने वाला योग दर्शन भी आत्मा को स्वीकार करता हैं। सांख्य के समान योग भी यह स्वीकार करता है कि पुरूष स्वभावतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं।

वेदान्त दर्शन में भी आत्मा को शुद्ध चैतन्य से युक्त घोषित किया गया है। इसके अतिरिक्त आत्मा को विभु, अद्वेत, निरवयव, देश कालातीत, परमार्थ और परम्सत घोषित किया गया है।

(8) कारणता पर चिन्तन– दर्शनशास्त्र के विभिन्न विषयों जैसे तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा आदि में कारण–कार्यवाद प्रमुख चर्चा का विषय रहता है क्योकि परमतत्व की खोज असल में आदि कारण की खोज है। यह कहना भी अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भारतीय दर्शनों में भेद प्रायः इसी वाद के आधार पर प्रस्तुत किए गये है और प्रतिपक्षियों द्वारा उनकी आलोचना भी मुख्यतः कारण–कार्यवाद की आलोचना के साथ चलती है।

चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शन कारण–कार्य सम्बन्धों को स्वीकार करते है किन्तु भारतीय दश्नन में इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण विवाद का प्रश्न यह है कि कारण तथा कार्य के मध्य क्या सम्बन्ध है?इस प्रश्न की संरचना कुछ इस प्रकार है कि क्या उत्पति से पूर्व कार्य, कारण में निहींत होता है?इस प्रश्न के भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायो द्वारा बताए गये समाधानों के आधार पर निम्नलिखित वर्ग दिखायी देते है–

(अ) सत्कार्यवाद– इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य अपनी उत्पति के पूर्व कारण में अव्यक्त रूप से निहित रहता है।इस प्रकार कारण तथा कार्य एक ही है किन्तु व्यक्त–अव्यक्त रूप में उनमे भेद पाया जाता है। कार्य व्यक्त कारण है तथा कारण अव्यक्त कार्य है। इस दृष्टिकोण का समर्थन सांख्य, योग, उतर मीमांसा के अद्वैत वेदान्ती तथा विशिष्टाद्वैतवादी करते है।

(ब) असत्कार्यवाद–इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य अपनी उत्पति के पूर्व कारण में निहींत नहीं होता है।असत्कार्यवाद कार्य को एक नया निर्माण मानता है इसी कारण यह दृष्टिकोण आरम्भवाद भी कहलाता है।इस मत का समर्थन न्याय–वैशेषिक के अतिरिक्त मीमांसा दर्शन भी करता है।

(स) असत्कारणवाद– बौद्ध दर्शन कार्य–कारण सम्बन्धों पर एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार असत् कारण से सत् कार्य उत्पन्न होता है।

(द) सत्–असत्कार्यवाद– जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य और पर्याय के भेद से कार्य सत् और असत् दोनो है।

(9) प्रमाण विचार– भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सभी भरतीय दार्शनिक सम्प्रदायों ने ज्ञान प्राप्ति के स्त्रोत कहे जाने वाले प्रमाणो पर विस्तृत चर्चा की है। अन्य दर्शनों से सदैव पृथक रहने वाले नास्तिक शिरोमणि चार्वाक ने भी अपनी ज्ञान–मीमांसा में इस विषय पर विस्तृत चर्चा की । चार्वाक दर्शन केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है तथा अन्य प्रमाणों जैसे कि अनुमान,उपमान और शब्द का खण्डन भी प्रस्तुत करता है।

बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो प्रकार के प्रमाण स्वीकार किये गयें है। जैन दर्शन तथा सांख्य–योग त्रिविध प्रमाण का समर्थन करते हुए प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द प्रमाण को स्वीकार करते है। भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में सबसे विस्तृत प्रमाण मीमांसा न्याय दर्शन की है जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान कुल चार प्रमाण स्वीकार किए है।

प्रभाकर मीमांसक प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान के अतिरिक्त अर्थापति को भी प्रमाण रूप में स्वीकार करते है जबकि भाट्ट मीमांसक और अद्वैत वेदान्त के समर्थक प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति के अतिरिक्त अनुपलब्धि को भी प्रमाण रूप में स्वीकार करते है।

उपयुर्क्त सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी भारतीय दर्शनों में कुछ विषयों पर मतैक्य है। जिन विषयों पर लगभग सभी भारतीय दर्शन एकमत है उन्हे ही भारतीय दर्शन की विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस मतैक्य में एक अपवाद के रूप में चार्वाक दर्शन को पृथक रखा जा सकता है क्योकि चार्वाक दर्शन गहरे दार्शनिक सिद्धान्तों के स्थान पर सामान्य जनमानस के ही दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। जनमानस में लोकप्रिय इस दर्शन को इस कारण से लोकायत भी कहते हैं। भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषताओं के विपरीत चार्वाक दर्शन जडवाद, भौतिकवाद, स्वभाववाद जैसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त चार्वाक दर्शन अपनी ज्ञानमीमांसा तथा नीति मीमांसा में भी सामान्य भारतीय दृष्टिकोण के विरोधी विचारों का ही प्रचलन करता है।

भारतीय दर्शन की इन सामान्य विशेषताओं में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि सभी भारतीय कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर एकमत तो है किन्तु इनकी व्याख्या को लेकर उनका दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न है।इस भिन्नता का कारण इन दर्शनों कि तत्वमीमांसा तथा ज्ञानमीमांसा में पाया जाने वाला भेद है।

(2) भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का वर्गीकरण

भारत में कुल नौ दर्शनों को उदय हुआ जो कि निम्नलिखित अनुसार है–चार्वाक, जैन, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा तथा उतर मीमांसा। इन सभी नौ दर्शनों को विभिन्न आधारों पर निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

(अ) वेदों की प्रमाणिकता के आधार पर–भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों को वेदों की प्रामाणिकता के आधार पर आस्तिक और नास्तिक दो भागों में बांटा गया है।जो भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय वेदों को प्रामाणिक ज्ञान के स्त्रोत के रूप में स्वीकार करते है वे सभी दार्शनिक सम्प्रदाय आस्तिक कहलाते है। आस्तिक दर्शनों की संख्या छह है। इसी कारण से इन्हे संयुक्त रूप से षडदर्शन भी कहा जाता है। ये आस्तिक दर्शन है–न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा उतर–मीमांसा।

इसके विपरीत जो दार्शनिक सम्प्रदाय वेदों को प्रामाणिक ज्ञान के स्त्रोत के रूप में स्वीकार नहीं करते है वे नास्तिक कहलाते है। नास्तिक दर्शनों की संख्या कुल तीन है जिसमें चार्वाक,जैन तथा बौद्ध दर्शन शामिल है। इनमें से चार्वाक दर्शन को नास्तिक शिरोमणि कहा जाता है।

इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य जनमानस में आस्तिक तथा नास्तिक का जो विभाजन ईश्वर को मानने या न मानने के आधार पर किया गया है वह भारतीय

दार्शनिक सम्प्रदायों पर लागू नहीं होता है।

(ब) ईश्वर की स्वीकार्यता के आधार पर– भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों को ईश्वर की स्वीकार्यता तथा अस्वीकार्यता के आधार पर एवँ ईश्वर इस जगत का रचियता है या नहीं इस प्रश्न पर पुनः दो भागों में बांटा गया है।जो दार्शनिक सम्प्रदाय ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते है तथा उसे जगत का सृष्टा मानते है वे ईश्वरवादी कहलाते है।ईश्वरवादी सम्प्रदायों की कुल संख्या चार है। ये है–न्याय, वैशेषिक, योग तथा उतर मीमांसा।

इसके विपरीत जो दार्शनिक सम्प्रदाय ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते है तथा ईश्वर को जगत का सृष्टा नहीं मानते है वे अनीश्वरवादी दार्शनिक सम्प्रदाय कहलाते है। अनीश्वरवादी दार्शनिक सम्प्रदायों की संख्या कुल पॉच है। ये है–चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य तथा मीमांसा।

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सांख्य तथा मीमांसा जहाँ एक और आस्तिक दार्शनिक सम्प्रदाय है वही दूसरी और वे अनीश्वरवादी दार्शनिक सम्प्रदाय कहलाते है क्योंकि वे वेदों को तो प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते है किन्तु ईश्वर को स्वीकार नहीं करते है।

(3) चार्वाक दर्शन–जड़वाद

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में चार्वाक दर्शन का विशेष महत्व रहा है। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन की प्रचलित धारा के विरूद्ध चलने का साहस केवल चार्वाक दर्शन ही दिखा पाया था। जैन तथा बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शनों ने भी कर्म तथा पुनर्जन्म के विचार को स्वीकार कर कहीं न कहीं प्रचलित एवं परम्परागत दार्शनिक चिन्तन का ही समर्थन किया था। ऐसे में चार्वाक द्वारा आत्मा, ईश्वर, कर्म तथा पुनर्जन्म और वेदों के महत्व को स्वीकार नहीं करना ही वास्तव में इसे नास्तिक शिरोमणि के रूप में प्रतिस्थापित करता है।

चार्वाक शब्द की व्युत्पत्ति–चार्वाक शब्द की उत्पति के लिए कई प्रकार के तर्क दिये जाते है। कुछ लोग मानते है कि चार्वाक नामक ऋषि द्वारा इस दर्शन का प्रवर्तन किया गया इसी कारण यह दर्शन चार्वाक कहलाया। कुछ विद्वान यह मानते है कि आत्मा, परलोक आदि का चर्वण अर्थात भक्षण करने के कारण इस दर्शन का नाम चार्वाक रखा गया। कुछ विद्वान यह भी कहते है कि चार्वाक शब्द की उत्पत्ति 'चर्व' धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है चबाना। चार्वाक खाने–पीने अर्थात चबाने पर अधिक बल देते थे इसी कारण इस दर्शन का नाम चार्वाक पड़ गया था। चार्वाक शब्द की उत्पति का एक अन्य कारण यह भी बताया जाता है कि इस दर्शन के अनुयायी चारू (मीठे) वाक् (वचन) बोलते थे इसी कारण यह दर्शन चार्वाक कहलाया।

इस सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण यह भी है कि वैदिक काल में यज्ञानुष्ठान तथा तपस्या के आचरण पर विशेष बल दिया जाता था। ऐहिक बातों के स्थान पर पारलौकिक बातों की चिन्ता मनुष्यों को विशेष थी। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप चार्वाक का उदय हुआ जिसमें जनसामान्य के अनुरूप विचारों को प्रस्तुत किया जिसके कारण यह दर्शन सामान्य जनता अर्थात लोक सामान्य में तेजी से लोकप्रिय हो गया और इसे लोकायत भी कहा जाने लगा।

चार्वाक दर्शन के प्रामाणिक जनक देवताओं के गुरू बृहस्पति माने जाते है इसी कारण इस दर्शन को बार्हस्पत्य दर्शन भी कहते है। बार्हस्पत्य सूत्र इस दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ भी है।

चार्वाक का जडवाद या भौतिकवाद–चार्वाक दर्शन को भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में जड़वाद अथवा भौतिकवाद का सबसे कट्टर समर्थक कहा जाया तो गलत नहीं होगा। जड़वाद के अर्थ को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है–

1. जड़वाद की प्रथम मान्यता यह है कि जगत का मूल तत्व कोई चेतन आत्मतत्व नहीं है बल्कि जगत का मूलतत्व भौतिक पदार्थ है।
2. जड़वाद, इन्द्रिय संवेदना को ज्ञान का मुख्य स्त्रोत मानता है।
3. जड़वाद मानता है कि ज्ञान अनुभव से परे तथा अनुभव से पूर्व नहीं है।
4. जड़वाद की यह मान्यता है कि बाह्य जगत वस्तुनिष्ठ है, आत्मनिष्ठ नहीं हैं अतः बाह्य जगत की सता, ज्ञाता मन अथवा चेतना से परे है।
5. जड़वाद के अनुसार यह जगत यांत्रिक नियमों से संचालित है। विश्व की घटनाओं को विचार, जादू, बलि, प्रार्थना, ईश्वर आदि प्रभावित नहीं करते है बल्कि प्राकृतिक नियम इन घटनाओं को संचालित करते है।
6. जड़वाद अति प्राकृतिक प्रयोजनकर्ता की सत्ता को नकार देता है। जड़वाद के अनुसार विश्व का व्यवस्थापक ईश्वर या कोई अति प्राकृतिक सत्ता नहीं है।
7. जड़वाद की यह भी मान्यता है कि मानव तथा जगत की सृष्टि या रचना नहीं हुई है बल्कि मानव तथा जगत का विकास हुआ है।

इस प्रकार जड़वाद, प्रत्ययवाद का एकदम विरोधी सिद्धान्त हैं। चार्वाक दर्शन भारत में जड़वाद का प्रतिनिधि रहा है तथा इस दर्शन ने जडवाद को एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया। इसी कारण से चार्वाक का जड़वाद व्यवस्थित जड़वाद

कहलाता है। चार्वाक दर्शन के जड़वाद को चार्वाक दर्शन की ज्ञान–मीमांसा, तत्व–मीमांसा तथा ज्ञान मीमांसा में सहज ही ज्ञात किया जा सकता है जो कि निम्नलिखित अनुसार है–

1. चार्वाक की जड़वादी ज्ञानमीमांसा–चार्वाक दर्शन की ज्ञानमीमांसा पर जड़वाद का गहरा प्रभाव है इसी कारण चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण के रूप में स्वीकार करते है तथा अन्य सभी प्रमाणों का खण्डन करते है। इस प्रकार से चार्वाक की ज्ञानमीमांसा के दो पक्ष है–मण्डन पक्ष तथा खण्डन पक्ष।

अपनी ज्ञान मीमांसा के मण्डन पक्ष में चार्वाक 'प्रत्यक्षमेवैंक प्रमाणन्' के माध्यम से एकमात्र प्रत्यक्ष को ही प्रमाण घोषित करते है। चार्वाक का कहना है कि ज्ञान प्रत्यक्ष से ही प्राप्त होता है, जो प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो सकता है उसका अस्तित्व भी नहीं है। प्रत्यक्ष दो प्रकार के है– बाह्य प्रत्यक्ष तथा आन्तरिक प्रत्यक्ष। बाह्य प्रत्यक्ष, इन्द्रियों के माध्यम से होता है जबकि आन्तरिक प्रत्यक्ष मनस् से होता है। इस प्रकार से सभी प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष के माध्यम से ही होता है।

प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण के रूप में स्थापित करने के बाद चार्वाक दार्शनिक अन्य प्रमाणों का खण्डन करते है जिसमें अनुमान तथा शब्द का खण्डन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसे ही चार्वाक दर्शन की ज्ञान मीमांसा का खण्डन पक्ष कहा जाता हैं। हेतु के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना ही अनुमान कहलाता है जिसका आधार हेतु तथा साध्य के बीच पाया जाने वाला नित्य सम्बन्ध है जिसे व्याप्ति कहते है। न्याय दर्शन में अनुमान के तीन प्रमुख लक्षण बताये गए हैं– पक्ष, साध्य तथा हेतु। इनमें पक्ष अनुमान का वह अंग है जिसके सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है। साध्य उसे कहा जाता है जो पक्ष के सम्बन्ध में सिद्ध किया जाता है। हेतु उसे कहते जिसके द्वारा पक्ष के सम्बन्ध में साध्य को सिद्ध किया जाता है। अनुमान की सिद्धि के लिए इसके पाँच प्रकार के तत्वों का होना आवश्यक है जिन्हें की अनुमान के पंचावयव कहते है और जो निम्नलिखित अनुसार है–

1. **प्रतिज्ञा**– इसमें साध्य का उल्लेख किया जाता है। जैसे पर्वत पर अग्नि है।
2. **हेतु**– साध्य को सिद्ध करने वाला आधार। जैसे धूम होने से।
3. **उदाहरण**– हेतु तथा साध्य की साहचर्यता को प्रकट करना। जहाँ–जहाँ धूम है वहाँ–वहां अग्नि होती है। जैसे रसोईघर आदि
4. **उपनय**– पक्ष में हेतु की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना। जैसे इस पर्वत पर भी धूम है।
5. **निगमन**– अनुमान का निष्कर्ष अर्थात पक्ष में साध्य की सिद्धि स्थापित करना। जैसे पर्वत पर अग्नि है।

चार्वाक दर्शन में अनुमान के खण्डन के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते किए गए है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है–

1. अनुमान का आधार व्याप्ति होती है जो कि हेतु और साध्य का साहचर्य नियम है किन्तु यह साहचर्य नियम उपाधिशून्य होना चाहिए। हम यह कह सकते है कि जहाँ–जहाँ धूम है वहाँ–वहां अग्नि है, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि जहाँ–जहाँ अग्नि है वहाँ–वहां धूम है। धूम और अग्नि का सम्बन्ध निरूपाधिक अथवा उपाधिमुक्त है, जबकि अग्नि और धूम का साहचर्य सोपाधिक अथवा उपाधियुक्त है। अग्नि के साथ धूम तभी सहचरित होगा जब अग्नि का आधार गीला ईधन हो। सूखे ईंधनवाली अग्नि से धुआँ नहीं उठता। इसीलिए चूँकि अग्नि और धूम का सम्बन्ध सोपाधिक है। अतः अग्नि धूम की अनुमापक नहीं हो सकती है।

2. चार्वाक दार्शनिक अनुमान के आधार स्तम्भ कही जाने वाली व्याप्ति के खण्डन के माध्यम से अनुमान के विरूद्ध दूसरा तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते है कि हमें किसी व्याप्ति का निश्चयात्मक ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? जहाँ–जहाँ धूम है वहाँ–वहाँ अग्नि है यह ज्ञान प्रत्यक्ष से सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारे लिए यह सम्भव नहीं है कि हम भूत तथा भविष्य के समस्त धूमों की अग्नि से सम्बन्ध को जान ले। चूंकि तीनों कालों में धूमों और अग्नियों के बीच के सम्बन्धों का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। अतः प्रत्यक्ष द्वारा व्याप्ति का ज्ञान सम्भव नहीं है।

नैयायिक जैसे अनुमान के समर्थक कुछ दार्शनिक विचारक यह कह सकते है कि व्याप्ति सम्बन्ध वास्तव में दो सामान्यों के बीच होता है यथा–धूमत्व सामान्य और अग्नित्व सामान्य में। नैयायिक यह भी मानते है कि सामान्य लक्षण सन्निकर्ष द्वारा हम उक्त सामान्यों और उनके सम्बन्ध का प्रत्यक्ष करते है। इस पर चार्वाक आक्षेप करते हुए कहते है कि यदि व्याप्ति सम्बन्ध सामान्यों के बीच होता है तो जाहिर है कि वह व्यक्तियों या विशेषों के बीच नहीं होता है।इस प्रकार से सामान्यों के माध्यम से भी व्याप्ति की स्थापना सम्भव नहीं है।

3. चार्वाक व्याप्ति आधारित अनुमान में अन्योन्याश्रय दोष के आधार पर भी इसका खण्डन करते है। चार्वाक दर्शन के अनुसार यदि यह माना जाये कि व्याप्ति का ज्ञान प्रत्यक्ष तथा सामान्य दोनों से सम्भव नहीं है तो व्याप्ति का ज्ञान अनुमान के माध्यम से हो सकता है तों उस दशा में अनुमान व्याप्ति पर तथा व्याप्ति अनुमान पर आधारित हो जायेगी इससे अन्योन्याश्रय दोष उत्पन्न हो जायेगा।

4. चार्वाक दार्शनिक व्याप्ति के माध्यम से अनुमान की सिद्धि में अनावस्था दोष भी स्वीकार करते है क्योंकि एक अनुमान में प्रयुक्त व्याप्ति की सिद्धि के लिए दूसरे अनुमान की आधारभूत व्याप्ति का सहारा लेना पड़ेगा और उस व्याप्ति की सिद्धि के लिए तीसरे अनुमान में प्रयुक्त व्याप्ति का अवलम्बन

लेना होगा और यह क्रम इसी प्रकार से आगे बढ़ता रहेगा जिससे अनवस्था दोष की उत्पति हो जायेगी।

अनुमान के पश्चात चार्वाक शब्द प्रमाण का भी खण्डन करते है। योग्य तथा विश्वसनीय व्यक्तियों के कथन और वेदों में वर्णित वाक्यों को शब्द प्रमाण कहा जाता है। चार्वाक दर्शन के अनुसार विश्वास योग्य व्यक्तियों से प्राप्त ज्ञान शब्द के रूप में मिलता है किन्तु शब्दों का सुनना तो प्रत्यक्ष ही है। इस प्रकार शब्द ज्ञान तो प्रत्यक्ष के द्वारा ही होता हैं।

चार्वाक दर्शन शब्द प्रमाण के इस खण्डन में वैदिक शब्दों तथा वैदिक साहित्य का खण्डन करते हुए तर्क देता है कि वेद तो उन धूर्त पुरोहितों का कृत्य है जिन्होंने अज्ञानी तथा विश्वासपरायण मनुष्यों को धोखें में डालकर अपनी जीविका का प्रबन्ध किया। अतः वैदिक शब्द प्रमाण नहीं हो सकते। चार्वाक दार्शनिक वैदिक शब्दों का खण्डन करते हुए कहते है कि शब्द से प्राप्त जितने भी ज्ञान है, वे सभी अनुमान सिद्ध है। किसी भी शब्द को हम इसलिए मानते है कि वह विश्वासयोग्य होता है। अतः शब्द से ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक अनुमान की आवश्यकता होती है जो कि निम्नलिखित अनुसार होता है–

(अ) सभी विश्वासयोग्य व्यक्तियों के वाक्य मान्य हैं।

(ब) यह विश्वासयोग्य व्यक्ति का वाक्य हैं।

(स) अतः यह वाक्य मान्य है।

इससे स्पष्ट है कि शब्द के द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान अनुमान पर अवलम्बित है। इसलिए शब्द की प्रामाणिकता उसी प्रकार से संदिग्ध है जिस प्रकार से अनुमान की। चार्वाक शब्द प्रमाण के खण्डन में एक अन्य तर्क यह भी देते है कि शब्द का ज्ञान यदि प्रत्यक्ष रूप नहीं माने तो इसे अधिक से अधिक अनुमानरूपी माना जा सकता है और अनुमान का खण्डन तो पहले ही किया जा चुका है। अतः जब अनुमान की सत्ता ही नहीं है तो अनुमान पर आधारित शब्द प्रमाण की सता का स्वतः ही खण्डन हो जाता है।

2. चार्वाक की जड़वादी तत्वमीमांसा– चार्वाक की तत्वमीमांसा पर भी जड़वाद के प्रभाव को देखा जा सकता है। चार्वाक दर्शन के अनुसार विश्व का निर्माण चार भूत पदार्थों अर्थात पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु के माध्यम से हुआ है। इस प्रकार चार्वाक आकाश के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते है। चार्वाक दर्शन का यह मानना है कि आकाश का ज्ञान हमें अनुमान द्वारा होता है अतः आकाश के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। विश्व के मूल तत्वों के सम्बन्ध में चार्वाक का यह मत उनके प्रमाण सम्बन्धी विचारों पर ही अवलम्बित हैं। चूंकि प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है अतः हम केवल उन्हीं वस्तुओं के अस्तित्त्व को स्वीकार कर सकते है जिनका प्रत्यक्ष हो सकता है।

चार्वाक के अनुसार चार प्रकार के प्रत्यक्ष भूतों अर्थात पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु से ही समस्त संसार का विकास हुआ है। इन तत्वों से केवल निर्जीव पदार्थ ही नहीं बल्कि संजीव द्रव्य भी इन्हीं से उत्पन्न हुए है। चार्वाक के अनुसार शरीर में पायी जाने वाली चेतना भी इन्हीं प्रत्यक्ष भूतों का ही परिणाम है। यहॉ पर चार्वाक के विरूद्ध यह आक्षेप किया जा सकता है कि चैतन्य का अस्तित्व तो किसी भी जड़ पदार्थ में नहीं है तो फिर इन जड पदार्थो से बने शरीर में चेतना का उदय किस प्रकार से हो सकता है? चार्वाक इसका उतर देते हुए कहते है कि मात्रात्मक परिवर्तन से स्वतः ही गुणात्मक परिवर्तन हो जाते हैं। अपने पक्ष को समझाते हुए वे उदाहरण देते है कि जिस प्रकार से पान, कत्था, चूना और सुपारी में लाल रंग का अभाव पाया जाता है किन्तु इनको जब एक साथ चबाया जाता है तो उनमें स्वतः ही लाल रंग की उत्पति हो जाती हैं। ठीक इसी प्रकार से गुड. में मादकता नहीं पायी जाती है किन्तु गुड़ के सड़ जाने पर वह मादक हो जाता हैं। इसी प्रकार से जब जड–तत्वों का सम्मिश्रण भी यदि एक विशेष ढंग से हो तो शरीर की उत्पति होती है तथा उसमें एक नए गुण चैतन्य का आविर्भाव हो जाता है।

इस प्रकार अन्य दर्शन जहाँ चैतन्य को आत्म तत्व का विशेष तथा स्वाभाविक गुण स्वीकार करते है वही चार्वाक दर्शन चैतन्य को शरीर का आगन्तुक गुण स्वीकार करता है तथा शरीर एवं आत्मा को एक ही घोषित कर देता है। चार्वाक के अनुसार शरीर से भिन्न किसी भी आत्मा रूपी तत्व का कोई अस्तित्व नहीं है।

अपनी बात को आगे बढाते हुए चार्वाक दर्शन यह भी कहता है कि यदि शरीर से भिन्न किसी आत्मा की कोई सत्ता नहीं है तो उसके अमर होने या नित्य होने का भी कोई प्रमाण नहीं है। मृत्यु के बाद शरीर नष्ट हो जाता है और उसे ही जीवन का अन्तः समझना चाहिए। आत्मा, शरीर के साथ उत्पन्न होती है तथा शरीर के साथ ही आत्मा का विनाश हो जाता है। चार्वाक का यह सिद्धान्त ही भूत चैतनयवाद कहलाता है। चार्वाक आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म के विरूद्ध निम्नलिखित तर्क देते है–

1. यदि नित्य आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश लेती है तो क्यों नहीं व्यक्ति अपने पुराने जन्म की बातों तथा घटनाओं को याद करता है।
2. यदि पुनर्जन्म होता है तब आत्मा अदृश्य रूप में क्यों रहती है? क्यों नहीं शरीर के साथ उसका भी प्रत्यक्ष हो जाता है?

चार्वाकों में भी दो वर्ग है–धूर्त चार्वाक तथा सुशिक्षित चार्वाक। कुछ चार्वाक देह को आत्मा कहते है, कुछ प्राण को, कुछ मन को और कुछ इन्द्रियों को पर सबके अनुसार शरीर का नाश हो जाने पर आत्मा नाम का कोई तत्व शेष नहीं रहता है। चार्वाक के इस मत की अन्य दर्शनों द्वारा कडी आलोचना की

गयी है। शंकर और वाचस्पति मिश्र के अनुसार चेतना यदि शरीर का गुण होती तो उसका भी प्रत्यक्ष होना चाहिए था। निर्जीव अवस्था में शरीर रहता है किन्तु चेतना नहीं रहती है। अतः चेतना शरीर से भिन्न है।

नैयायिकों के अनुसार चेतना शरीर में रहती है, पर शरीर का गुण नहीं है। जैसे पानी, गर्म हो सकता है पर गर्मी पानी का नहीं बल्कि अग्नि का गुण है। शरीर में परिवर्तन होने पर भी चेतना वही रहती है। स्मृति इत्यादि अपरिवर्तित चेतना के कारण ही सम्भव है। अतः चेतना आत्मा का गुण है। चार्वाक के चेतना तथा आत्मा के सम्बन्ध में प्रस्तुत उपयुर्क्त दृष्टिकोण के विरूद्ध निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते है–

1. चार्वाक ने चेतना को शरीर का गुण माना हैं। चेतना को शरीर का गुण तभी माना जा सकता है जब चेतना निरन्तर शरीर में विद्यमान हो परन्तु बेहोशी और स्वप्नहीन निद्रा की अवस्था में शरीर विद्यमान रहता है फिर भी उसमें चेतना का अभाव रहता है। अतः चेतना को शरीर का गुण मानना उचित नहीं है।
2. चार्वाक दार्शनिक यह तर्क देते है कि यदि चैतन्य शरीर का गुण नहीं होता तो इसकी सत्ता प्राप्त शरीर से अलग भी होती। चूँकि शरीर से अलग चैतन्य देखने को नहीं मिलता है इससे सिद्ध होता है कि चैतन्य शरीर का गुण है। परन्तु चार्वाक के इस तर्क में यह दोष है कि इससे केवल यह सिद्ध होता है कि शरीर, चैतन्य का आधार है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि चैतन्य शरीर का गुण हैं।
3. चार्वाक द्वारा चेतना को शरीर का आगन्तुक गुण मानने के विरूद्ध एक तर्क यह भी दिया जाता है कि यदि चेतना शरीर का गुण है तो इसे अन्य भौतिक गुणों की भाँति प्रत्यक्ष का विषय होना चाहिए परन्तु चेतना को न तो आज तक किसी ने देखा है, न सुना है, न स्पर्श किया है, न सूंघा है और नहीं उसका स्वाद लिया है। इससे प्रमाणित होता है कि चेतना शरीर का गुण नहीं है।
4. यदि चेतना शरीर का गुण है तो इसे अन्य भौतिक गुणों की तरह वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को चेतना के स्वरूप का ज्ञान एक ही समान रहना चाहिए। परन्तु इसके विपरीत हम चेतना का ज्ञान वैयक्तिक पाते हैं। उदाहरणस्वरूप सिरदर्द की चेतना साधारण व्यक्ति और चिकित्सक दोनों को रहती है किन्तु दोनों की चेतना में अत्यधिक अन्तर पाया जाता है। एक व्यक्ति की चेतना दूसरे व्यक्ति के द्वारा नहीं जानी जाती है।
5. यदि चेतना शरीर का गुण है तो हमें शरीर की चेतना का ज्ञान नहीं होना चाहिए, क्योकि शरीर जो स्वयं चेतना का आधार है कैसे चेतना के द्वारा प्रकाशित हो सकता है?
6. चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र ज्ञान का साधन है। प्रत्यक्ष से चार्वाक कैसे जान पाता है कि आत्मा नहीं है? प्रत्यक्ष के द्वारा केवल किसी वस्तु के अस्तित्व को ही जान सकते है परन्तु जो वस्तु नहीं है उसका ज्ञान कैसे प्रत्यक्ष के माध्यम से सम्भव है यह चार्वाक नहीं बताते है।

चार्वाक अपने जड़वादी दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते है क्योंकि आत्मा की ही भांति ईश्वर का भी प्रत्यक्ष नहीं होता है। जड़–तत्वों के सम्मिश्रण से संसार की उत्पति हुई है। इसके लिए किसी सृष्टा की कल्पना अनावश्यक है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि क्या संसार की सृष्टि के लिए जड़–तत्वों का सम्मिश्रण स्वतः ही अपने आप हो जाता है? किसी भी वस्तु के निर्माण के लिए उपादान कारण के साथ–साथ निमित्त कारण की भी आवश्यकता होती है। मिट्टी के घड़े को बनाने में मिट्टी की आवश्यकता होती है क्योंकि मिट्टी घड़े का उपादान कारण है किन्तु मिट्टी के अतिरिक्त एक निमित्त कारण कुम्हार की भी आवश्यकता है जो मिट्टी को घड़े का रूप देता है।

चार्वाक के अनुसार चार भूत है, वे केवल संसार के उपादान कारण है। इसके अतिरिक्त एक निमित्त कारण अर्थात ईश्वर की आवश्यकता होती है जो इन उपादानों को लेकर इस विचित्र संसार की सृष्टि करता है। इसके उत्तर में चार्वाक कहते है कि जड़ तत्वों का स्वयं अपना–अपना स्वभाव है। अपने–अपने स्वभाव के अनुसार ही वे संयुक्त होते हैं और उनके स्वतः सम्मिश्रण से संसार की उत्पत्ति होती है। इसके लिए किसी ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। चार्वाक के अनुसार जडभूतों के अंतर्निहित स्वभाव से ही जगत् की उत्पति हो जाती है। इसलिए चार्वाक मत 'स्वभाववाद' कहलाता है।

चार्वाक के अनुसार ईश्वर की इस कारण भी कोई आवश्यकता नहीं है क्योकि यह जगत उद्देश्यपूर्ण नहीं है। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि इस जगत की सृष्टि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुई है। अधिक युक्तिसंगत यही है कि जगत की उत्पत्ति जड़ तत्वों के आकस्मिक संयोग से हुई है। चार्वाक दर्शन के अनुसार संसार की उत्पत्ति किसी प्रयोजन के लिए नहीं हुई है तथा संसार केवल जड–तत्वों का आकस्मिक संयोग मात्र है इसी कारण से चार्वाक दर्शन यदृच्छावाद कहलाता है।

चार्वाक दर्शन संसार के निर्माणक एवं सृष्टिकर्ता ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। इसी कारण चार्वाक दर्शन को अनीश्वरवादी दर्शन भी कहा जाता है। चार्वाक दर्शन में तो प्रत्यक्षगम्य शक्तिसम्पन्न राजा ही ईश्वर माना गया है।

3. चार्वाक दर्शन की जडवादी नीतिमीमांसा—ज्ञान तथा तत्वमीमांसा की भांति चार्वाक दर्शन की नीति मीमांसा भी जड़वाद से प्रभावित हैं। चार्वाक दर्शन अपनी नीतिमीमांसा के प्रारम्भ मे ही अन्य दर्शनों द्वारा स्वीकार्य पुरूषार्थ विचार का खण्डन कर देता हैं । अन्य दर्शनों में जीवन के चार पुरूषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माने गये है। इनमें मोक्ष को परम पुरूषार्थ अथवा लक्ष्य माना गया है। चार्वाक दर्शन केवल अर्थ तथा काम को ही पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार करता है तथा धर्म एव मोक्ष का खण्डन करता है।

चार्वाक के अनुसार धर्म का नैतिक जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है। धर्म का उपयोग बुद्धिमान पुजारियों के द्वारा लोगों को बेवकूफ बनाकर अपनी आजीविका चलाना है। वेद और उपनिषद विरोधाभास से परिपूर्ण है। पुजारियों ने जिसे पाप एवं पुण्य अथवा स्वर्ग या नर्क बतलाया है, वह सिर्फ साधारण लोगों को भयभीत करने के लिए है।

चार्वाक परम पुरूषार्थ मोक्ष का भी विभिन्न तर्कों के माध्यम से खण्डन कर देता है। अन्य दर्शन मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते है। दुःखों का पूर्ण विनाश ही मोक्ष है। विशिष्टाद्वैतवाद के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शन यह मानते है कि जीवन रहते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। चार्वाक इस दृष्टिकोण का खण्डन करते हुए कहते है कि यदि मोक्ष का अर्थ जीवनकाल में ही दुःखों का अन्त समझा जाये तो यह सम्भव नहीं है क्योकि शरीर धारण तथा सुख—दुःख में अविच्छेद्य सम्बन्ध है। दुःख को कम किया जा सकता है तथा सुख में वृद्धि हो सकती है किन्तु दुःखों का पूर्ण विनाश सम्भव ही नहीं हैं। चार्वाक के अतिरिक्त अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष का अर्थ आत्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होना मानते है। चार्वाक के अनुसार मोक्ष का यह अर्थ भी स्वीकार्य नहीं किया जा सकता क्योकि आत्मा नाम की कोई सता है ही नहीं। चार्वाक के अनुसार वास्तव में मृत्यु ही मोक्ष हैं।

कुछ मीमांसक विचारक स्वर्ग को मानव जीवन का लक्ष्य घोषित करते है। स्वर्ग पूर्ण आन्नद की अवस्था को कहते है। इहलोक में वैदिक आचारों के अनुसार चलने से परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। चार्वाक इसे भी स्वीकार नहीं करते है क्योंकि चार्वाक के अनुसार परलोक का कोई प्रमाण नहीं हैं। स्वर्ग और नर्क पुरोहितों की मिथ्या धारणाएं है। इसी क्रम में चार्वाक वैदिक कर्म—काण्डों की आलोचना करते हैं। चार्वाक दर्शन के अनुसार यदि श्राद्ध में अर्पित किया हुआ भोजन प्रेतात्मा की भूख मिटा सकता है तो कोई पथिक भोजन की विषय—वस्तु साथ लिए क्यों फिरता है? उसके परिवारजन क्यों नहीं उसकी भूख मिटाने हेतु उसके घर पर ही भोजन अर्पित कर देते है। चार्वाक यह भी तर्क देते है कि पुरोहितों का यदि यह वास्तविक विश्वास है कि यज्ञ में बलिदान किया हुआ पशु स्वर्ग पहुँच जाता है तो वे क्यों नहीं पशुओं के बदलें में अपने माता—पिता की बलि दे देते जिससे वे भी सीधे स्वर्ग में पहुंच जाये।

चार्वाक अपने नीतिशास्त्र के उपयुर्क्त खण्डन पक्ष के प्श्चात इसका मण्डन पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते है कि जीवन में परम पुरूषार्थ काम है। काम से चार्वाक का तात्पर्य सभी प्रकार के इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति करना है तथा इस परम पुरूषार्थ काम की प्राप्ति में अर्थ एक प्रकार का साधन है। चार्वाक के अनुसार जीवन में शुभ केवल वही कार्य है जिनसे कि सुख की प्राप्ति हो। चार्वाक का कहना है कि इस जीवन में अच्छा भोजन, ऐन्द्रिय सुख, सुन्दर वस्त्र, सुगंधित फूल, चंदन तथा अन्य सुगन्धित एवं सुखप्रद वस्तुओं का उपभोग करना ही स्वर्ग सुख हैं इन सब सुखों से वंचित रहना दुःखों का कारण है। इस प्रकार से जड़वादी चिन्तन के कारण चार्वाक अपने नीतिशास्त्रीय चिन्तन में सुखवाद का समर्थन करते है। सुखों के स्वरूप को लेकर के चार्वाक दार्शनिक दो भागों में विभक्त हो जाते है—धूर्त चार्वाक तथा सुशिक्षित चार्वाक। इनका संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित अनुसार है—

1. धूर्त चार्वाक— धूर्त चार्वाक स्वयं के वर्तमान तथा भौतिक सुखों को अधिक महत्व प्रदान करते है। इनका मानना है कि वर्तमान जीवन में अधिक से अधिक जितना सुख प्राप्त किया जा सकता है मनुष्य को उसे प्राप्त कर लेना चाहिए। भविष्य के सुख की आशा में रहकर के कोई वर्तमान सुख को नहीं ठुकराता नहीं है। कल मयूर मिलेगाा इस आशा में कोई हाथ में आये हुए कबूतर को नहीं छोडता हैं। संदिग्ध स्वर्णमुद्रा से हाथ में आयी हुई कौड़ी ही अधिक ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार से धूर्त चार्वाकों का नीति दर्शन है— खाओं, पीओं और मौज करो।

2. सुशिक्षित चार्वाक— धूर्त चार्वाकों द्वारा प्रतिपादित निकृष्ट सुखवाद के कारण ही चार्वाक दर्शन की सामान्य रूप से आलोचना की जाती है किन्तु सुखभोग कोई घृणा का विषय नहीं है। ऋग्वेद में सोमरसपान, धन, यश तथा काम को यथेष्ठ महत्व दिया गया है किन्तु ऋग्वेद में वर्णित सुखवाद को किसी ने भी हेय दृष्टि से नहीं देखा। धूर्त चार्वाकों ने सुख को स्वार्थपूर्ण तथा इन्द्रियलोलुपता तक ही सीमित रखा इसी कारण से उसकी आलोचना की जाती है। सुशिक्षित चार्वाक उत्कृष्ट तथा भविष्य के सुखों का समर्थन करते है। कामसूत्र के प्रणेता वात्सायन के अनुसार स्वार्थ सुखवाद सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक हैं। यदि मनुष्य दूसरों के लिए अपने सुख का कुछ भी परित्याग न करे तो सामाजिक जीवन सम्भव ही नहीं है। कामसूत्र के द्वितीय अध्याय में वास्तयायन ने नैतिक विषयों पर विचार करते हुए

शिष्ट सुखवाद का वर्णन किया है।

वात्सायन ईश्वरवादी थे। वे परलोक को मानते थे अतः वे साधारण अर्थ में धूर्त चार्वाकों की भांति जड़वादी नहीं थे। वे पुरूषार्थ के रूप में त्रिवर्ग अर्थात धर्म, अर्थ और काम को स्वीकार करते है तथा यह मानते है कि जीवन में इस त्रिवर्ग का सामंजस्यपूर्ण सेवन करना चाहिए।

वात्सयायन का सुखवाद इसलिए भी शिष्ट माना जाता है क्योंकि वे ब्रह्मचर्य, धर्म तथा नागरिक वृति को अधिक महत्व देते हैं। उनका मत है कि इसके बिना मनुष्य का सुखभोग, पाशविक सुखभोग से कुछ भी भिन्न नहीं होगा।

निष्कर्ष– भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में जड़वाद तथा सुखवाद के समर्थक होने के कारण चार्वाक शब्द ही निंदावाचक हो गया है किन्तु वास्तविकता यह है कि भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के विकास में चार्वाक की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चार्वाक दर्शन ने परम्परागत भरतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के विरूद्ध विभिन्न प्रकार के आक्षेप प्रस्तुत किए जिससे अनेक नवीन दार्शनिक समस्याओं का जन्म हुआ। ऐसी समस्याओं का समाधान कर दर्शन और अधिक पुष्ट तथा समृद्ध हुआ। इस प्रकार चार्वाक दर्शन ने परम्परागत भारतीय दार्शनिक चिन्तन को हठवादिता से बचाया।

इसके अतिरिक्त चार्वाक को उनके सुखवादी चिन्तन के लिए भी याद किया जा सकता है। यह सत्य है कि सुखवाद के कारण चार्वाक दर्शन की आलोचना हुई किन्तु सुखोपभोग कोई घृणा का विषय नहीं हैं। वेदों में अन्य दर्शनों द्वारा भी किसी न किसी रूप में सुखवाद का समर्थन मिलता है।च ार्वाक दार्शनिको विशेष रूप से सुशिक्षित चार्वाकों ने इस सुखवाद को एक व्यवस्थित नैतिक सिद्धान्त के रूप में जनमानस के समक्ष प्रकट किया था।

कुछ चार्वाक राजा को ईश्वर मानते है। इससे यह स्पष्ट है कि वे समाज तथा उसके प्रमुख की आवश्यकता को अनुभव करते है। इस विचार से चार्वाक के सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन की व्यापकता का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त चार्वाक दर्शन में दण्डनीति तथा वार्ता का विचार भी मिलता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. दर्शन का शाब्दिक अर्थ है?
   (अ) सुनना (ब) देखना
   (स) चिन्तन करना (द) तर्क करना
2. भारतीय दर्शन के स्वरूप से सम्बन्धित नहीं है?
   (अ) भौतिकवाद (ब) आध्यात्मिकता
   (स) धार्मिक प्रकृति (द) संश्लेषणात्मक चिन्तन
3. फिलोस का शाब्दिक अर्थ है?
   (अ) ज्ञान (ब) प्रेम
   (स) बुद्धि (द) कर्तव्य
4. पूर्व जन्म के वे कर्म जिनका फल इस जन्म में मिलना प्रारम्भ हो गया है क्या कहलाते है?
   (अ) संचित कर्म (ब) क्रियमाण कर्म
   (स) प्रारब्ध कर्म (द) संचीयमान कर्म
5. भारतीय दर्शन में बन्धन का कारण माना गया है?
   (अ) ज्ञान को (ब) अविद्या का
   (स) भक्ति को (द) पाप को
6. बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित है?
   (अ) अष्टांगिक योग (ब) त्रिरत्न
   (स) साधन–चतुष्ट्य (द) अष्टांगिक मार्ग
7. सत्कार्यवाद के समर्थक है?
   (अ) चार्वाक, जैन तथा बौद्ध
   (ब) सांख्य, योग तथा बौद्ध
   (स) न्याय, वैशेषिक तथा वेदान्त
   (द) सांख्य, अद्वैत वेदान्त तथा विशिष्टाद्वैत
8. उन दर्शनों के समूह को पहचानिए जो कि आस्तिक तथा अनीश्वरवादी है?
   (अ) चार्वाक, जैन (ब) सांख्य तथा बौद्ध
   (स) न्याय तथा वैशेषिक (द) सांख्य तथा मीमांसा
9. जडवाद के अनुसार जगत का मूलतत्व है?
   (अ) ज्ञान को (ब) चेतना
   (स) भौतिक पदार्थ (द)आत्म तत्व
10. चार्वाक के अनुसार परम पुरूषार्थ है?
    (अ) धर्म (ब) अर्थ
    (स) मोक्ष (द) काम

उतरमाला–

(1)–(ब), (2)–(अ), (3)–(ब), (4)–(स), (5)–(ब), (6)–(द), (7)–(द), (8)–(द), (9)–(स), (10)–(द)

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

1. दर्शन शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
2. नास्तिक दर्शनों के नाम लिखिए?
3. षड्दर्शन कौनसे है?
4. ईश्वरवादी दर्शनों के नाम बताइऍ?
5. अनीश्वरवादी दर्शन कौन–कौनसे है?

6. उन दर्शनों के नाम बताइएँ जो आस्तिक तो है किन्तु ईश्वरवादी नहीं है?
7. ऋत् से आप क्या समझते है?
8. ऋत् के नियन्त्रक देवता कौन है?
9. कृत प्रणाश से आप क्या समझते है?
10. अकृताभ्युपगम से आप क्या समझते है?
11. अदृष्ट तथा अपूर्व के सिद्धान्त को कौनसे दर्शन स्वीकार करते है?
13. कौनसा दर्शन नास्तिक शिरोमणि कहलाता है?
14. चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक कौन माने जाते है?
15. चार्वाक दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ कौनसा माना जाता है?
16. चार्वाक को लोकायत दर्शन क्यों कहा जाता है?
17. चार्वाक दर्शन के अनुसार एकमात्र प्रमाण कौनसा है?
18. तत्वोपल्लवसिंह संहिता के रचयिता कौन है?
19. चार्वाक कौन–कौनसे प्रमाणों का खण्डन करते है?
20. चार्वाक पंचमहाभूतों में से किस महाभूत को स्वीकार नहीं करते है?
21. चार्वाक के अनुसार चेतना किसका तथा कैसा गुण है?
22. चार्वाक दर्शन के दो सम्प्रदाय कौन–कौनसे है?
23. चार्वाक दर्शन के अनुसार कितने पुरूषार्थ स्वीकार किए गए है?
24. चार्वाक मोक्ष को किस रूप में परिभाषित करते है?

लघुतरात्मक प्रश्न–

1. साधन चतुष्ट्य से आप क्या समझते है?
2. आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों में क्या अन्तर है?
3. ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दर्शनों में क्या भेद है?
4. मीमांसा दर्शन में वर्णित पॉच प्रकार के कर्मो का उल्लेख कीजिए?
5. सांख्य–योग दर्शन में वर्णित त्रिविध दुःखों का वर्णन कीजिए?
6. जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति के भेद को समझाइए?
7. सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवाद में क्या अन्तर है?
8. स्वतः प्रामाण्यवाद तथा परत प्रामाण्यवाद में क्या भेद है?
9. चार्वाक शब्द की व्युत्पति के विभिन्न आधारों को समझाइए?
10. चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण के स्वरूप को समझाइये?
11. चार्वाक के स्वभाववाद सिद्धान्त को समझाइये?
12. चार्वाक के यदृच्छावाद के सिद्धान्त को समझाइये?
13. भूत चैतन्यवाद से आप क्या समझते है?
14. धूर्त तथा सुशिक्षित चार्वाकों के विचारों में क्या भेद है?
15. चार्वाक के सुखवाद को समझाइए?
16. चार्वाक ईश्वर के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण रखते है?
17. चार्वाक के मोक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझााइये?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारतीय दर्शन के स्वरूप को समझाते हुए इसकी पाश्चात्य दर्शन से तुलना कीजिए?
2. भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए व्याख्या कीजिए?
3. भारतीय दर्शन में कारणता से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए?
4. भारतीय दर्शन में प्रामाण्य से सम्बन्धित दृष्टिकोणों को प्रकट कीजिए?
5. चार्वाक के जडवाद को समझाइये?
6. चार्वाक की ज्ञानमीमांसा को स्पष्ट किजिए?
7. चार्वाक की तत्वमीमांसा का उल्लेख वर्णन किजिए?
8. चार्वाक की नीतिमीमांसा को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए?